महावीर-निर्वाण का ढाई हजारवाँ मंगल-वर्ष

आत्मधर्म

[348]

पधारो वीर प्रभु भगवान

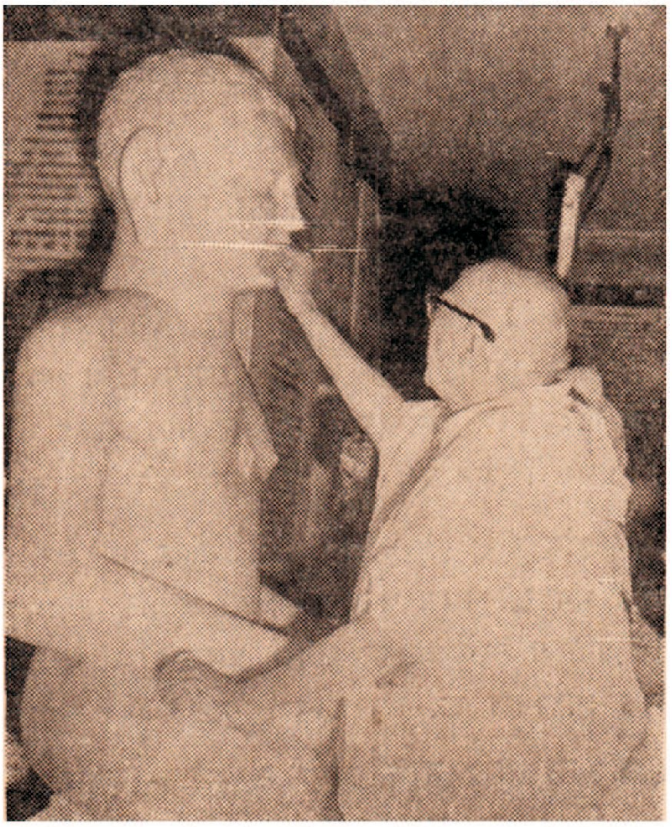

स्वागत करते हैं गुरु कहान

श्री परमागम-मंदिर में अत्यंत भक्तिपूर्वक स्वामीजी महावीर प्रभु की प्रतिमा पर अंकन्यासविधि कर रहे हैं।

तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार * संपादक : ब्रह्मचारी हरिलाल जैन
वीर सं० 2500 चैत्र (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 29 : अंक नं० 12

महावीर भगवान का निर्वाण-महोत्सव कैसे मनायें!

अखिल भारत, भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव समिति दिल्ली की ओर से, तीर्थक्षेत्रों की फिल्म तैयार करनेवाले भाई, पिछले मास सोनगढ़ पधारे; उन्होंने सोनगढ़ की फिल्म ली, तथा महावीर भगवान के निर्वाण महोत्सव संबंधी स्वामीजी का संदेश भी लिया। स्वामीजी ने संदेश में जो कहा, वह समस्त जैन समाज को उपयोगी मार्गदर्शक होने से यहाँ दे रहे हैं। [—संपादक]

महावीर भगवान ने भेदविज्ञान द्वारा मोक्षदशा प्राप्त की है, और जगत के लिये भी उन्होंने भेदविज्ञान का ही संदेश दिया है। आत्मा शुद्ध ज्ञानानंद चैतन्यतत्त्व है; शरीर अचेतन है और रागादिभाव दु:खदायक आस्रव हैं, वे दोनों अत्यंत भिन्न हैं। इसप्रकार आत्मा और आस्रवों की भिन्नता जानकर, ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति करना ही जैनशासन में महावीर भगवान का संदेश है।

ऐसा भेदविज्ञान करना और उसका प्रचार करना, वही महावीर भगवान का निर्वाण-महोत्सव मनाने की सच्ची रीति है।

जीव ने शुभ-अशुभभाव तो अनंतबार किये; परंतु जैनशासन में भगवान ने शुभराग को तो पुण्य कहा है, और मोहरहित शुद्ध चेतना-परिणाम को ही धर्म कहा है। भगवान कुन्दकुन्दस्वामी भी विदेहक्षेत्र में सीमंधर परमात्मा के पास जाकर यही संदेश लाये हैं। जगत के जीवो! तीर्थंकरों के ऐसे संदेश को प्राप्त करके अपना आत्महित करो।

तीर्थंकर भगवान जहाँ से मोक्ष पधारे ऐसे सम्मेदशिखर, गिरनार, पावापुरी आदि तीर्थों की यात्रा करने से भगवंतों का स्मरण होता है; ऐसे तीर्थों की यात्रा, मुनियों का बहुमान तथा साधर्मीजनों के प्रति परस्पर प्रेम-वात्सल्य का प्रचार हो और जगत के जीव वीतराग-विज्ञान प्राप्त करके आत्महित करें—यही निर्वाण-महोत्सव का प्रयोजन है।

समस्त जैनसमाज के नर-नारी साथ मिलकर भक्ति-उल्लासपूर्वक
महावीर भगवान का निर्वाण-महोत्सव मनायें—यह अच्छी बात है।

[जय महावीर]

आत्मधर्म

वीर सं. 2500
फाल्गुन
मार्च 1974

वर्ष 29 वाँ
अंक 11

आओ, प्रभु के मोक्ष का महोत्सव मनायें!

महावीर भगवान का नाम लेते ही जैनमात्र एक अनुपम ऊर्मि का अनुभव करता है। महावीर—एक तो हमारे भगवान हैं और दूसरे उनके निर्वाण का ढाई हजारवाँ वर्ष चल रहा है; ऐसे अवसर में हम अपने भगवान की बातें लिखें, यह कितने आनंद का विषय है।—ऐसी अंतरंग ऊर्मि से प्रेरित होकर लगभग 180 जितने जिज्ञासुओं ने हमें (हिन्दी तथा गुजराती में) महावीर प्रभु संबंधी निबंध लिख भेजे हैं। इस कार्य में भाइयों तथा बहिनों ने भी भाग लिया है और एक से एक अच्छे लेख भेजे हैं, जिसके लिये हम उन सबको धन्यवाद देते हैं। मानों महावीर प्रभु हमारे समक्ष उपस्थित हों और मोक्षमार्ग बतला रहे हों और हम उस मार्ग पर चल रहे हों—ऐसी शैली की यह निबंधमाला इस अंक से आत्मधर्म में प्रारंभ हो रही है; आशा है वह आपको अवश्य पसंद आयेगी और भगवान के मोक्ष का महोत्सव मनाते हुए आनंद होगा।

[निबंध लिखनेवालों को धन्यवाद के साथ-साथ 'महावीर-पदक' पारितोषक रूप में भेजने का कार्य चल रहा है; कुछ भेज भी चुके हैं और बाकी सबको वैशाख शुक्ला-2 तक भिजवा दिये जाने की आशा है। महावीर प्रभु संबंधी नये लेख स्वीकार किये जाते हैं।] [—संपादक]

मोक्षगामी भगवान महावीर को जानने से महान लाभ

2500 वें महावीर निर्वाण-महोत्सव के हेतु लिखा गया निबंध (1)

[एम. के. जैन, सोनगढ़]

भगवान महावीर परमात्मा मोक्षदशा को प्राप्त हुए, उससे मेरे आत्मा को क्या हुआ ?—अहा, आत्मा के ज्ञान-आनंदमय मोक्षपद का जिसने निर्णय किया, अर्थात् राग से अत्यंत रहित ऐसी आत्मा की पूर्ण शुद्ध सिद्धदशा, तथा ज्ञान की पूर्णदशारूप केवलज्ञान, उसरूप होनेवाले आत्मा जगत में हैं, ऐसा जहाँ निर्णय किया, वहाँ अपने आत्मा के पूर्ण शुद्धस्वभाव का भी निर्णय हुआ, इसलिये स्वयं भी वैसे पूर्णानंद की ओर पग बढ़ाया। इसप्रकार 'हे प्रभु! तुम्हारे चरणचिह्नों पर मुझे आना है'—ऐसे भावपूर्वक महावीर भगवान की सच्ची पहिचान होती है और उसमें मोक्ष का महान लाभ है। केवलज्ञान का और सिद्धपद का जिसने निर्णय किया, उसने अपने आत्मा में केवलज्ञान का और सिद्धपद का प्रारंभ किया... मोक्षमार्ग का प्रारंभ किया। अतीन्द्रियभाव से आत्मा को जानकर ही सर्वज्ञ परमात्मा की सच्ची पहिचान और स्तुति हो सकती है।

सर्वज्ञ का निर्णय करने से ऐसा निर्णय भी उसमें साथ ही आ जाता है कि—मेरे आत्मा में पूर्ण ज्ञान और आनंद प्रगट होने का स्वभाव भरा है; राग मेरा स्वरूप नहीं है या अल्पज्ञता जितना मैं नहीं हूँ। इसप्रकार स्वभाव सामर्थ्य का स्वीकार होने पर उस ओर का अपूर्व उल्लास आता है, इसलिये निःशंक होकर परिणति उसरूप परिणमित हो जाती है और राग से भिन्नता हो जाती है।—ऐसी भेदज्ञानदशा, वह भगवान को जानने का महान अपूर्व लाभ है... आत्मप्राप्ति का इष्ट लाभ है।

हे प्रभु! आप सर्वज्ञ हुए... किसप्रकार सर्वज्ञ हुए ?—कि अंतर की चैतन्यशक्ति के अवलंबन से आप सर्वज्ञ हुए और हमें भी वही मार्ग बतलाया;—वही आपकी प्रसन्नता और कृपा है। आपके बतलाये मार्ग को जानकर मैं भी उसी मार्ग पर चला आ रहा हूँ—यही आपकी सच्ची भक्ति है। ऐसी भक्तिपूर्वक मोक्ष के मार्ग पर चलनेवाला कहता है कि मुझपर भगवान प्रसन्न हुए, उनकी कृपा से मेरे भवभ्रमण का अंत आया। प्रभो! आपके मार्ग को पाकर मैंने

अनादिकालीन रागादि परभावों का साथ छोड़ दिया और अनंत तीर्थंकरों का साथ लेकर मोक्षमार्ग में गमन किया। प्रभो! आपको जानने के पश्चात् अब अंतर के ज्ञान में आपको साथ रखकर ही हम सिद्धपद की साधना कर रहे हैं। आपके मार्ग से मोक्ष को साधते हुए हमें अत्यंत आनंद होता है... आपके मार्ग पर चलते हुए अब हमारी साधना में भंग नहीं पड़ेगा।

अहा, धन्य है आपके मार्ग को! कैसा सुंदर है आपका मार्ग! राग का मैल जिसमें नहीं है—ऐसा सुंदर वीतरागता से शोभायमान मार्ग आपने प्रकाशित किया है। हे महावीरस्वामी! आप वर्तमान में भले ही भरतक्षेत्र में नहीं हैं, ढाई हजार वर्ष से आप सिद्धपद में विराजमान हो, तथापि आपका मंगलमार्ग तो यहाँ शोभायमान है और उसी मार्ग में हम भव्य जीव आपके चरणचिह्नों पर आ रहे हैं। क्षेत्र से आप भले ही दूर हों परंतु हमारे ज्ञान से आप किंचित् दूर नहीं हैं, ज्ञान में तो आप साक्षात् विराजमान हो... इसलिये हमें आपका विरह नहीं है–नहीं है।

प्रभो! मोक्ष का मार्ग तो अनादि से चला ही आ रहा था, परंतु हमने अभी तक वह मार्ग देखा नहीं था, हम मार्ग भूले थे; अब आपके शासन में श्रीगुरुओं ने हमें वह मार्ग बतलाया है, उन्मार्ग से हटाकर वीतरागमार्ग में लगाया है। आपके मार्ग में आने से जो आनंद होता है, उसका कैसे वर्णन करें... वह तो आनंद का मार्ग है।

प्रभो! आपके मार्ग को जानकर हमने आपको नमन किया, तो अब जैनमार्ग के सिवा अन्यत्र कहीं हमारा चित्त नहीं नमेगा, अन्य किसी मार्ग के प्रति हमारा चित्त आकर्षित नहीं होगा... आपके मार्ग को पाकर अब हमारा जगत के साथ कोई प्रयोजन नहीं रहा।

भक्त कहता है कि—वीरप्रभु के मार्ग को पाकर हम उनके उत्तराधिकारी हुए हैं, तो अब हमारी मोक्ष के ओर की परिणति को कौन रोकनेवाला है? वीरप्रभु हमारे धर्मपिता हैं; उनका उत्तराधिकार लेने के लिये हम वीर होकर आत्मसाधना करेंगे और महावीर बनेंगे... उसमें कोई हमें रोक नहीं सकता। आत्मा की रुचि और स्वीकृति के बल से वीर होकर हमें मोक्षमंडली में सम्मिलित हो जाना है।

भगवान महावीर ने अशरीरी पूर्ण ज्ञान–आनंद तो केवलज्ञान होते ही प्राप्त कर लिया था। पश्चात् ढाई हजार वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या को पावापुरी से भगवान ने अशरीरी सिद्धपद प्राप्त किया। इंद्रों ने और राजाओं ने दीपमालाएँ प्रज्वलित कर निर्वाण का महान उत्सव

मनाया... अर्थात् मोक्षपद का बहुमान किया। मोक्ष का सच्चा उत्सव तो आत्मा में सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय के आनंददीप प्रज्वलित करने से होता है, और जिसने आत्मा में ऐसे दीपक प्रज्वलित किये, उसी ने भगवान महावीर को तथा उनके मार्ग को पहिचाना है। सादि-अनंतकाल के महान सुख का लाभ उस पहिचान का फल है।

सादि-अनंत अनंत समाधि सुख में,
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो।

ऐसा अत्यंत अद्भुत सुख भगवान को पहिचानने से प्राप्त होता है। चेतनस्वरूप से भगवान के आत्मा को पहिचानने से अपने आत्मा में अनंतगुण का मधुर चैतन्यरस एकसाथ वेदन में आता है... आत्मा एकदम शांत-शांत स्वभावरूप परिणमित हो जाता है। पूर्वकाल में कभी जिसका अनुभव नहीं किया था, ऐसी शांति का उसमें अनुभव होता है।

प्रभो! आपको चेतनभाव से जानने पर ज्ञात हुआ कि हम भी आपके ही कुल के (चेतनस्वरूप) हैं। राग से भिन्न होकर मोक्ष को साधने चले तो अब वापिस नहीं लौटेंगे, ऐसी हमारे तीर्थंकरों के कुल की टेक है; मोक्ष को साधना, वह हमारे कुल की रीति है... हे नाथ! आपके मार्ग में आये हैं तो अब अप्रतिहतरूप से अभूतपूर्व ऐसा केवलज्ञान लेकर ही रहेंगे। 'वीर के लघुनंदन' हम भी वीर हैं।

जो जानता अरहंत को, गुण-द्रव्य अरु पर्याय से,
वह जीव जाने आत्म को, तसु मोह नष्ट अवश्य हो।

वीर निर्वाण के इस ढाई हजारवें मंगल-वर्ष में आत्मा की प्राप्ति हो, अनुभूति हो; उस जैसा कोई लाभ जगत में नहीं है। चैतन्य की अपूर्व शांति में आने का वीरप्रभु का आदेश है, वही वीर का शासन है। अरे, वीर शासन में बतलाया गया आत्मा तो अतीन्द्रिय आनंद का विशाल पर्वत है, उसमें प्रवेश करने पर परम शांतरस का वेदन होता है।—उसकी महिमा की क्या बात है! इस आत्मा की कीर्ति जगत में त्रिकाल फैली हुई है... चैतन्यतत्त्व सर्वत्र विजयवंत वर्तता है। अनंत गंभीरभावों से भरपूर ऐसा ज्ञानतत्त्व मैं हूँ; ज्ञान को अपने ज्ञान में ही युक्त करके मैं अपने को ज्ञानरूप अनुभवता हूँ—यही वीरनाथ की सच्ची उपासना है और यही मुक्ति का महोत्सव है, यही दीपावली की मंगल भेंट है। अहा, आत्मा को आनंद का लाभ हो—उस

जैसी उत्तम भेंट और क्या हो सकती है ? भगवान के शासन में आनंदमय समतारस का पान करके आत्मा तृप्त-तृप्त होता है। भगवान से भेंट हुई... अब भव कैसे होंगे ? भगवान और भक्त की ऐसी संधि है कि भक्त भी अल्पकाल में भगवान हो जाता है। बस, भगवान होने के लिये वीरप्रभु के इस ढाई हजारवें निर्वाण-महोत्सव वर्ष में हमारे आत्मा में मोक्षमार्ग के मंगल-दीप प्रज्वलित हों—ऐसा वीर प्रभु का आशीर्वाद लेता हूँ। वीर जैसा हमारा जीवन बने!

जय महावीर!

भगवान महावीर का इष्ट उपदेश

अहिंसा परमो धर्मः

अहिंसा धर्म विश्व में सभी को प्रिय है; परंतु उसका सच्चा स्वरूप समझनेवाले तो जगत में कोई विरले ही होते हैं। और उस अहिंसा का सच्चा स्वरूप समझे बिना उसका पालन नहीं हो सकता; अतः अहिंसा-प्रेमी लोगों को उसका सच्चा स्वरूप समझना चाहिये। भगवान महावीर के शासन में परम अहिंसा धर्म का सत्य स्वरूप समझाया गया है। उसका यहाँ विचार करेंगे।

प्रथम तो अहिंसा धर्म का अर्थ क्या ? यह समझना चाहिए।

❀ महावीर प्रभु के शासन में अहिंसा-धर्म उसे कहा है कि जिसके सेवन से अवश्य मोक्ष प्राप्ति हो, और आत्मस्वभाव का घात न हो।

❀ तथा हिंसा उसे कहते हैं कि जिससे आत्मस्वभाव का घात हो और संसार में भव करना पड़े (-फिर वह भव सुगति का हो चाहे दुर्गति का)। इसप्रकार अहिंसा मोक्ष का कारण है, और हिंसा संसार का कारण है।

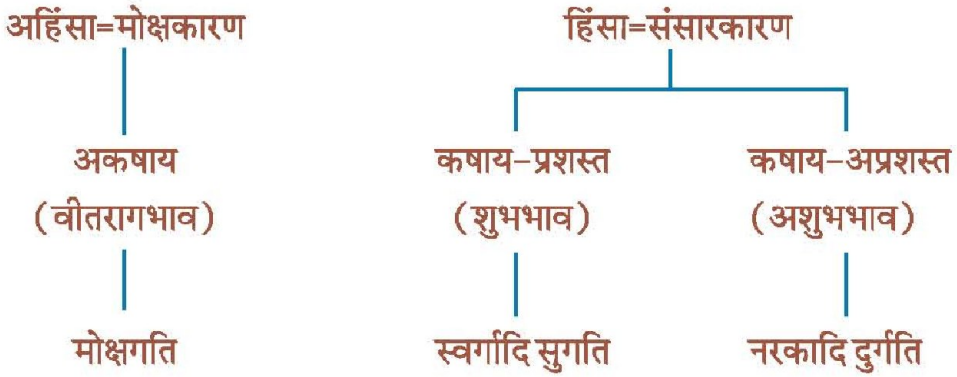

❀ संसार की गति के मुख्य दो प्रकार : सुगति और दुर्गति।

❀ हिंसा के भी दो प्रकार हैं—

1. शुभभावजनित अर्थात् प्रशस्त कषायरूप हिंसा।

2. अशुभभावजनित अर्थात् अप्रशस्त कषायरूप हिंसा।

इसप्रकार जीव के अकषाय या सकषाय, (वीतराग या रागादि) परिणाम के साथ, अहिंसा या हिंसा का संबंध है, परंतु परजीवों के जीवन या मरण के साथ इस जीव की अहिंसा या हिंसा का संबंध नहीं है; क्योंकि परजीव का जीवन-मरण उसकी आयु के अनुसार होता है—परंतु जिस जीव के अकषाय-वीतरागभाव है, वह जीव अहिंसक है, और जिस जीव के सकषाय-रागादिभाव हैं, वह जीव हिंसक है। यह भगवान वीरनाथ के जैनशासन में प्रतिपादित अहिंसा और हिंसा का महान सिद्धांत है। उसमें जो रागादि हिंसा है, वह अधर्म है, और वीतरागभावरूप जो अहिंसा है, वह परम धर्म है। ऐसे अहिंसा धर्म का उपदेश सर्व जीवों के लिये हितकारी होने से, वही 'इष्ट-उपदेश' है, और वही भगवान महावीर का उपदेश है।

वीतरागभावरूप अहिंसा इष्ट फल देनेवाली है, और मोक्ष ही इष्ट है।

रागादि भावरूप हिंसा अनिष्ट फल देनेवाली है, और संसार अनिष्ट है।

ऐसी अहिंसा तथा हिंसा का स्वरूप विशेष स्पष्ट समझने के लिये दृष्टांत देते हैं—

एक जंगल में 40 लुटेरे रहते थे; वे क्रूर परिणामी एवं माँसाहारी थे। जंगल में शिकार की खोज में वे घूमते रहते थे।

कभी एक संत धर्मात्मा उस जंगल में से पसार हो रहे थे; तभी आत्मा के जाननेवाले और वीतरागभाव में मस्त रहनेवाले उस संत को, उन दुष्ट लुटेरों ने देख लिया; देखते ही उन्हें पकड़कर मारने के लिये एवं उनका माँस खाने के लिये वे लुटेरे उनके पीछे लग गये।

धर्मात्मा-संत मुनि तो उपसर्ग समझकर शांति से ध्यान में बैठ गये। लुटेरे उन्हें पकड़कर मारने की तैयारी में ही थे... किंतु—

उसी वक्त एक राजा वहाँ आ पहुँचा; राजा सज्जन था एवं शूरवीर भी। मुनि को और लुटेरों को देखते ही वह सब परिस्थिति समझ गया। उसने मुनि की रक्षा के लिये, लुटेरों को बहुत समझाया कि इस निर्दोष धर्मात्मा को मत सताओ। परंतु माँस के लोलुपी वे दुष्ट लुटेरे किसी भी प्रकार नहीं माने, और वे मुनि को मारने के लिये तैयार हुए।

अतः राजा से रहा नहीं गया; उसने मुनि की रक्षा के लिये अपनी तलवार उठाई। चालीस लुटेरे भी एक साथ राजा के ऊपर टूट पड़े। परंतु बहादुर राजा ने उन सभी लुटेरों को मारके मुनि की रक्षा की। लुटेरे लोग न तो मुनि को मार सके, और न राजा को भी मार सके।

अब हमें यहाँ दो बातों पर विचार करना है—

1. राजा के द्वारा तो 40 लुटेरे मारे गये।

2. लुटेरों के द्वारा एक भी मनुष्य का घात नहीं हुआ।—तो अब उन दोनों में से अधिक हिंसा आप किसके मानेंगे ?

राजा को अधिक हिंसक कहेंगे कि लुटेरों को ? अवश्यमेव आप लुटेरों को ही अधिक हिंसक कहेंगे; और राजा को हिंसक नहीं कहेंगे अपितु उसके कार्य की प्रशंसा करेंगे।

❀ 40 मनुष्य मर गये तो भी उस राजा को अल्प हिंसा क्यों लगी ?

❀ और एक भी मनुष्य न मरा तो भी उन लुटेरों को अधिक हिंसा क्यों लगी ?

❀ मुनिराज तो दोनों के प्रति मध्यस्थ, राग-द्वेषरहित हैं, अतः वे वीतरागी-अहिंसक हैं।

विचार करने पर उपरोक्त प्रश्न का खुलासा निम्न प्रकार होगा—

'अधिक जीवों के मरने से अधिक हिंसा, और कम जीवों के मरने से कम हिंसा'—ऐसा कोई नियम नहीं है। यदि ऐसा हो तो राजा ही अधिक हिंसक ठहरता।—किंतु

1. राजा के द्वारा 40 लुटेरों का मरण होने पर भी उसे कम हिंसा लगी–वह स्वर्ग में गया।
2. लुटेरों के द्वारा कोई न मरा, तो भी उन्हें तीव्र हिंसा लगी–वे नरक में गये।
3. वीतरागभाव में स्थित मुनिराज अहिंसक रहे, वे मोक्ष गये।

ऐसा नहीं है। तब कैसा है ?

- जहाँ अधिक कषाय वहाँ अधिक हिंसा,
  जहाँ अल्प कषाय वहाँ अल्प हिंसा।
- और जहाँ अकषायरूप वीतरागभाव वहाँ अहिंसा।—ऐसा सिद्धांत है।
- लुटेरों ने मुनि को मारने के भाव में बहुत कषाय किया, अतः उन्हें बहुत हिंसा लगी।
- राजा ने अल्प कषाय किया। अतः उसे अल्प हिंसा लगी। यद्यपि उसे मुनि को बचाने का शुभभाव था, तो भी उसने जितना कषाय किया, उतनी तो हिंसा ही हुई, क्योंकि कषाय की उत्पत्ति ही हिंसा है।

❀ जिन्होंने राग-द्वेष न किया, ऐसे वे मुनिराज परम अहिंसक रहे; क्योंकि वीतरागभाव ही अहिंसा है; और जो रागादि है, सो हिंसा है।

हिंसा-अहिंसा का यह अबाधित नियम महावीर भगवान ने जैनसिद्धांत में कैसी सुंदर शैली से समझाया है! यह आप देखिये—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवति अहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्ति हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥44॥

जहाँ अंश नहीं रागादि का, बस वो अहिंसा जानना;
रागादि का हो अंश भी, तो उसे हिंसा जानना।
संक्षेप में जिनवरकथित आगम-परम का सार है,
पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय में अमृतसूरि का वचन है॥

जीव में रागादि भावों की उत्पत्ति का न होना, वही सच्ची अहिंसा है; और रागादि भावों की उत्पत्ति, वही हिंसा है—यही जिनागम का सार है।

❀ जहाँ 'कषायसहित योग से' द्रव्य-भावरूप प्राणों का घात है—वहाँ नियम से हिंसा है।

❀ जिस सत्पुरुष को योग्य आचरण है और रागादि कषाय का अभाव है; उसे मात्र प्राणघात होने पर कभी हिंसा नहीं होती।

❀ और जहाँ रागादि कषायवश प्रमादप्रवृत्ति हो वहाँ, जीव का मरण हो या न भी हो, किंतु हिंसा अवश्य है। क्योंकि—

❀ सकषाय जीव, कषाय के द्वारा पहले स्वयं अपने आत्मा के चैतन्यप्राण का तो घात करता ही है;—फिर अन्य जीवों की हिंसा तो हो या न भी हो।

❀ परवस्तु के कारण से जीव को सूक्ष्म भी हिंसा नहीं होती; अपने कषायभाव से ही हिंसा होती है।

हिंसा-अहिंसा के संबंध में वस्तुस्वरूप का यह नियम है, और यह जैन सिद्धांत का संक्षिप्त रहस्य है।

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स॥262॥

मारो न मारो जीव को, है बंध अध्यवसान से।
यह आतमा के बंध का संक्षेप निश्चयनय विषैं॥

समयसार की इस गाथा में श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि परजीवों का जीवन या मरण उनके कर्म के उदय अनुसार कदाचित् हो या न हो, किंतु उन्हें मारने का या जिलाने का जो अध्यवसाय है, वही निश्चय से जीव को बंध का कारण है। हिंसा-अहिंसा का ऐसा सूक्ष्म स्वरूप मात्र जैनशासन में ही है,—क्योंकि जीव का सच्चा चैतन्यप्राण और रागादि की भिन्नता जैनशासन में ही दिखलाई है। अन्य मिथ्यामती लोग हिंसा-अहिंसा का सच्चा स्वरूप नहीं पहिचान सकते, क्योंकि जीव के चैतन्यप्राण और रागादि की भिन्नता को वे नहीं जानते।

इस महत्व के विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिये एक और दृष्टांत पांडवों का देखिये—

युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन तथा नकुल-सहवे इन पाँच पांडवों ने जब श्रीकृष्ण की द्वारकानगरी को भस्मीभूत देखा, तब संसार की ऐसी क्षणभंगुरता को देखकर उनका चित्त उदास हुआ, और वे नेमनाथ प्रभु के समवसरण में आये; प्रभु के मुख से धर्मोपदेश सुनकर वे संसार से विरक्त हुए, और मुनिदशा प्रगट कर आत्मध्यानपूर्वक देशो-देश विहार करने लगे। विचरते-विचरते वे सोनगढ़ के समीप शत्रुंजयगिरि-सिद्धक्षेत्र पर पधारे; अनेक भक्तजनों ने अत्यंत हर्षपूर्वक पांडव मुनि भगवंतों के दर्शन किये। किंतु दुर्योधन के भानेज के मन में पांडवों को देखकर ऐसा दुष्ट विचार आया कि इन्हीं पांडवों ने मेरे मामा को मारा है; अतः अब मैं उसका बैर लूँ, क्योंकि इस समय मुनिदशा में वे कुछ प्रतिकार नहीं करेंगे।—ऐसे दुष्ट विचारपूर्वक उसने लोहे के तप्त अलंकार पांडवों के शरीर में पहिना दिये; इसप्रकार उनको जीते जी जला देने का घोर उपसर्ग किया। मस्तक पर धकधकते लोहे के मुकुट पहिनाये—जिससे उनके सिर जलने लगे, हाथ-पैर के गहनों से हाथ-पैर भी जलने लगे... उस वक्त—

1— युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन तो चिदानंदतत्त्व की शांत अनुभूति में ऐसे लीन हो गये कि उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष भी नहीं हुआ। अग्नि की ज्वालाओं के बीच भी वे चैतन्य के शांतरस में ऐसे मग्न हुए कि उसी समय क्षपकश्रेणी चढ़कर, संपूर्ण वीतराग होकर,

केवलज्ञान प्रगट किया और तुरंत ही संसार से मुक्त हो गये। उन्हें राग की उत्पत्ति ही न हुई, अतः वे परम अहिंसक रहे; चैतन्यभाव का किंचित् भी उपघात उन्हें नहीं हुआ।

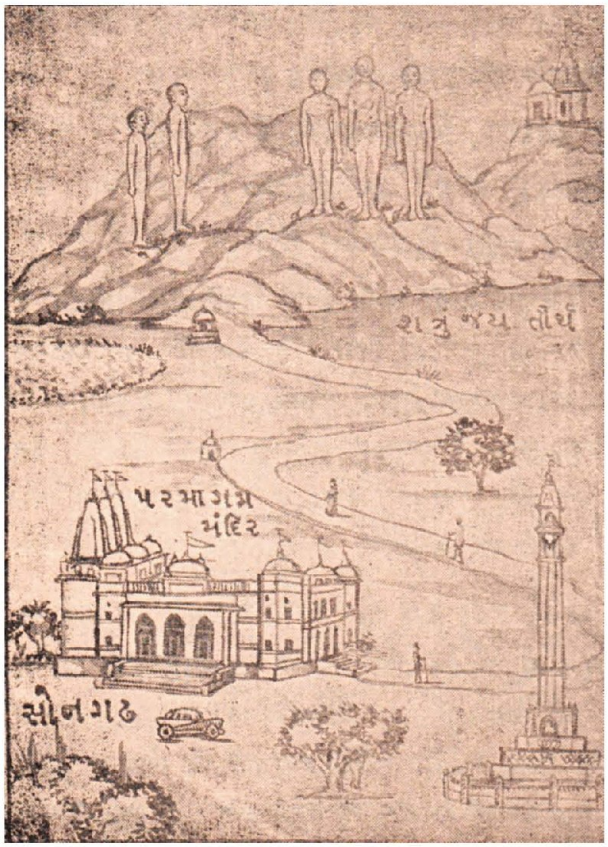

[शत्रुंजय-गिरि पर स्थित पाँच पाण्डव; उनमें से तीन तो वीतरागी अहिंसा के द्वारा मोक्ष गये और दो पाण्डवों को सूक्ष्म-रागरूप हिंसा के रह जाने से संसार में भव करना पड़ा।]

2— दूसरी ओर : नकुल और सहदेव इन दोनों भाइयों ने यद्यपि शांति से उपसर्ग सहन किया, दुश्मन के प्रति क्रोध नहीं किया; फिर भी उन्हें इतनी सी वृत्ति का उत्थान हुआ कि ऐसे उपसर्ग में हमारे बड़े भाइयों की स्थिति कैसी होगी ?—इसप्रकार संज्वलनरूप बंधुमोह रह गया, इससे राग की उत्पत्ति हुई, और वे वीतरागभावरूप नहीं रह सके, और केवलज्ञान भी न पाये; परंतु उतने विकल्प से चैतन्यभाव की सूक्ष्म हिंसा होने के कारण उन्हें संसार में सर्वार्थसिद्धि का भव हुआ। (मोक्ष न हुआ किंतु भव हुआ।)

हाँ, उन्होंने विशेष उद्वेग न किया, एवं पांडवों को बचाने की चेष्टा नहीं की, इतनी वीतरागता उन्हें विद्यमान थी, और वह अहिंसा थी।

3— तीसरे, कोई जीव ऐसे भी थे कि जिन्होंने यह उपसर्ग देखकर, उपसर्ग करनेवाले के प्रति तीव्र क्रोध किया, तथा पांडवों को जलते देखकर बहुत उद्वेग किया, भक्ति से उन्हें बचाने की चेष्टा की।

— इन जीवों ने, किसी जीव का घात नहीं किया तो भी, जिसने क्रोधादि भाव किये, उतने अंश में चैतन्यभाव की हिंसा की। अतः ऊपर के दो नंबरवाले जीवों से इन जीवों के अधिक हिंसा है। शुभपरिणाम होने पर भी हम उन्हें अहिंसक नहीं कहेंगे; क्योंकि अहिंसारूप तो हमने वीतरागभाव को ही माना है। अतः

❀ जीव को जिलाने के उद्वेग परिणामवाला जीव पूर्ण अहिंसक नहीं है।

❀ परंतु स्वरूप में स्थिर वीतरागपरिणामवाला जीव ही पूर्ण अहिंसक है।

चतुर्थ जीव–जिसको मुनि को मार डालने के क्रूर परिणाम थे, उसको तो क्या कहें ? उसे तो तीव्र हिंसा है।

इसप्रकार जीव के सराग अथवा वीतराग परिणाम अनुसार हिंसा–अहिंसा है; और उसमें भी मिथ्यात्व सबसे बड़ी हिंसा है।

जैन सिद्धांत अनुसार हिंसा–अहिंसा का ऐसा सत्य स्वरूप जो नहीं जानता; वह वीतरागभावरूप अहिंसाधर्म को नहीं पहिचानता और वह रागादि हिंसाभावों को–जिनके द्वारा जीव के चैतन्यप्राण का घात होता है, उस राग को (शुभराग को) अहिंसाधर्म मानता है। इसप्रकार हिंसा को ही अहिंसा मानने से उस जीव को मिथ्यात्व है; और वह मिथ्यात्व सबसे महान हिंसा का सेवन है। जिसने हिंसा को ही अहिंसा मान लिया है (राग को ही वीतरागता मान लिया है)—इसके सदृश महान पाप अन्य क्या हो सकता है ?

अतः जिसे सच्चा अहिंसक बनना हो उसे—

❀ किसी भी राग को परम धर्मरूप अहिंसा नहीं मानना चाहिये।

❀ जितना राग, उतनी हिंसा—इसप्रकार समझकर उसको छोड़ना चाहिये।

❀ और जितनी वीतरागता, उतनी अहिंसा–इसप्रकार समझकर उसका आदर करना चाहिये।

—ऐसी वीतरागी अहिंसा द्वारा ही भव से पार हुआ जा सकता है—

अतः न करना राग किंचित, कहीं भी मोक्षेच्छुको।
वीतराग होकर इस तरह वह भव्य भवसागर तरे!॥

(पंचास्तिकाय-१७२)

ऐसी वीतरागी अहिंसा वह वीरों का धर्म है। वीर की वीतरागी अहिंसा की जय हो!

'अहिंसा परम धर्म है'

❀ यह समझने के लिये एक सुंदर दृष्टांत ❀

1— किसी जंगल की एक रमणीय गुफा में एक भद्र परिणाम शूकर (सुअर) रहता था।

2— उस जंगल में एक बाघ रहता था, वह क्रूर परिणामी था।

3— एक वीतरागी मुनिराज विचरण करते हुए उस जंगल में पधारे; और जिस गुफा में शूकर रहता था, उस गुफा में विराजमान होकर, शुद्धोपयोग द्वारा आत्मध्यान करने लगे।

मुनिराज को गुफा में देखकर—

1— भद्र परिणामी शूकर को ऐसा शुभ विचार आया कि अहा, ये कोई वीतरागी महात्मा मेरी गुफा में पधारे हैं, इनको देखते ही कोई अपूर्व शांति उत्पन्न होती है। इनके पधारने से मेरी गुफा धन्य हो गई... मैं इनकी सेवा किसप्रकार करूँ! ऐसे शुभभावपूर्वक वह शूकर गुफा के द्वार पर बैठकर मुनिराज की रक्षा करता था।

2— उसी समय गुफा के समीप आये हुए बाघ को ऐसा अशुभभाव उत्पन्न हुआ कि मैं इस मनुष्य को मारकर खा जाऊँ।

3— उसी समय शुद्धोपयोग में लीन वे मुनिराज न तो शूकर से राग करते हैं और न बाघ से द्वेष करते हैं—वे वीतराग हैं।

मुनिराज को खाने के लिये बाघ गुफा के समीप आया। शूकर को उसका ध्यान आ गया और उसने तुरंत ही बीच में आकर बाघ को रोका।

बाघ उस पर टूट पड़ा... बाघ और शूकर दोनों लड़े; बहुत लड़े। क्रूर बाघ से भी शूकर ने बराबर की टक्कर ली; उसके मन में एक ही धुन थी कि प्राण देकर भी मैं मुनि की रक्षा करूँगा। दोनों खूब लड़ते हैं—एक तो मुनि के भक्षण के लिये लड़ता है और दूसरा मुनि की रक्षा के लिये लड़ता है। दोनों ने एक-दूसरे को मार डाला.. दोनों ने एक-दूसरे की हिंसा की। बाघ तो मरकर दुर्गति में गया, शूकर मरकर सुगति में गया; मुनिराज तो ध्यान में ही वीतरागरूप से विराजमान रहे और केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षगति को प्राप्त किया।

1. प्रशस्तकषायरूप हिंसावाले शूकर का स्वर्ग में भव।
2. अप्रशस्तकषायरूप हिंसावाले बाघ का नरक में गमन।
3. कषायरहित वीतरागी अहिंसक मुनिराज का मोक्षगमन।

अब उनका पृथक्करण—

इस दृष्टांत में तीन पात्र हैं—

1— बाघ का जीव—जो मुनि को मारने के अप्रशस्त द्वेष-कषाय में वर्त रहा है।

2— शूकर का जीव—जो मुनि को जिलाने के प्रशस्त राग-कषाय में वर्त रहा है।

3— मुनिराज—जो वीतरागभाव में वर्त रहे हैं।

अब, इसमें हिंसा-अहिंसा किसप्रकार है, यह देखने के लिये, जब हम शूकर और बाघ की तुलना करते हैं तो बाघ की अपेक्षा शूकर के परिणाम शुभ हैं; अर्थात् बाघ की अपेक्षा उस शूकर की हम प्रशंसा करेंगे। मुनि की हिंसा नहीं हुई तो भी बाघ को अपने क्रूर परिणाम के कारण हिंसा का पाप लगा और वह दुर्गति में गया। बाघ की हिंसा होने पर भी शूकर अपने शुभ परिणाम के कारण सुरगति में गया। इसप्रकार जीवों का बाह्य जीवन-मरण, हिंसा-अहिंसा का कारण नहीं है, परंतु जीव का भाव ही हिंसा-अहिंसा का कारण है। इस दृष्टांत में मुनि की हिंसा भले ही नहीं हुई तो भी मुनि को मार डालने के बाघ के हिंसकभाव को तो किसी भी प्रकार भला—उत्तम नहीं कहा जा सकता। मुनि को मारने की अपेक्षा मुनि को जिलाने का रागभाव अवश्य प्रशंसनीय है....

— परंतु —

अभी हमारी बात अपूर्ण है, क्योंकि अभी तीसरे पात्र के साथ तुलना करना बाकी है—

जब हम मुनिराज की साथ में तुलना करेंगे, तो निर्विवादरूप से देखेंगे कि वीतरागभाव में विराजमान मुनिराज का कार्य ही श्रेष्ठ कार्य है, वही अत्यंत प्रशंसनीय हैं, और उस वीतरागभाव की तुलना में शूकर का प्रशस्तराग भी प्रशंसनीय नहीं है।

मुनिराज का वीतरागभाव ही परम अहिंसारूप होने से उसे हम प्रशंसनीय कहेंगे और उसे ही मोक्ष का कारण कहेंगे।

उस वीतरागभाव के समक्ष शूकर के रागभाव को हम 'परम' अहिंसा नहीं कहेंगे, अपितु उसे भी 'हिंसा' की कक्षा में ही रखेंगे। भले ही उस राग को 'प्रशस्त' विशेषण लगायें तो भी हिंसा तो कहनी ही पड़ेगी, क्योंकि जितना राग है, उतनी हिंसा है। पीतल को प्रशस्त विशेष

लगाकर 'प्रशस्त पीतल'—इसप्रकार कहें उससे वह कहीं, स्वर्ण की जाति में तो नहीं आ जाता; उसीप्रकार रागादि हिंसा को प्रशस्त विशेषण लगाने से कहीं वह 'अहिंसा' नहीं बन जाती।

अतः शुभराग युक्त उस शूकर का जीव भी, आगे बढ़कर जब रागरहित चैतन्यभाव प्रगट करेगा, तभी वह वीतरागभावरूप अहिंसा-धर्म में प्रविष्ट होगा और उस परम अहिंसा-धर्म द्वारा वह मोक्ष को साधेगा। इसप्रकार 'अहिंसा परमो धर्म' है।

मुनि के वीतरागभाव को और शूकर के रागभाव को हम एक कक्षा में नहीं रख सकते क्योंकि दोनों की जाति एक-दूसरे से विरुद्ध है।

मुनि को मारने के भाव की अपेक्षा से जिलाने का भाव वह उत्तम होने पर भी, दोनों की एक कक्षा है। (जिसप्रकार एक ही वर्ग में पढ़ते हुए विद्यार्थियों में एक प्रथम नंबर पर होता है और कोई एक अंतिम नंबर पर होता है।) उसीप्रकार बाघ और शूकर दोनों जितने रागादि कषायभाव हैं, उतनी हिंसा है; और जो हिंसा है, वह अहिंसा नहीं है अर्थात् धर्म नहीं है।

मुनिराज का वीतरागभाव वह अहिंसा है और वह धर्म है।

ऐसे वीतराग अहिंसा धर्म की जय हो!

अब भगवान महावीर के द्वारा कहे हुए ऐसे 'परम अहिंसा धर्म' को जानने के लिये, और उसका पालन करने के लिये मुमुक्षु जीव को प्रथम तो चैतन्य उपयोग और राग, इन दोनों का अत्यंत भिन्नत्व जानना चाहिये। भिन्नत्व जानता है, वही रागरहित शुद्ध उपयोगरूप अहिंसा धर्म को साध सकता है।

ऐसा भिन्नत्व किसप्रकार जानना? इसप्रकार अंतर में जागृत हो तो—भगवान महावीर और उनके शासन में हुए संतों ने वैसा भिन्नत्व अपने आत्मा में साक्षात् अनुभव कर आगम में भी स्पष्ट बतलाया है; वह यहाँ कहते हैं—

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पुग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं॥24॥

सर्वज्ञ-ज्ञान विषे सदा उपयोगलक्षण जीव है,
वह कैसे पुद्गल हो सके जो तू कहे 'मेरा' अरे!

शरीर से और रागादिभावों से भिन्न, चैतन्यमय आत्मतत्त्व को जो नहीं जानता है और रागादिसंयुक्त जीव का ही अनुभव करता है—ऐसे अप्रतिबुद्ध जिज्ञासु को, आचार्यदेव सर्वज्ञज्ञान की साक्षी से और अपने स्वानुभव से प्रतिबोध करते हैं कि हे भाई! 'जो नित्य उपयोगस्वभावरूप है, वह जीव है' इसप्रकार सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में ज्ञात हुआ है, आगम में भी भगवान ने इसप्रकार स्पष्ट प्रकाशित किया है, अनुभव में भी जीव सदा ज्ञानस्वरूप ही अनुभव में आता है। अपना उपयोगत्व छोड़कर कभी पुद्गलरूप नहीं हो जाता, जिसप्रकार अंधकार को और प्रकाश को एकत्व नहीं है परंतु भिन्नत्व ही है; उसीप्रकार चेतनप्रकाश रहित रागादिभावों को और चेतनप्रकाशरूप उपयोग को कभी भी एकत्व नहीं है, अपितु सदा भिन्नत्व ही है। इसप्रकार तू तेरे जीव को उपयोगलक्षण द्वारा समस्त जड़ से और राग से भिन्न जान, और उपयोगस्वरूप से ही स्वयं को अनुभव में लेकर हे जीव! तू अत्यंत प्रसन्न हो... आनंदित हो।

अरे, अब तक उपयोगस्वरूप को भूलकर मैंने मुझे रागादिरूप ही मानकर मेरी हिंसा की और उससे चार गति में मैं दु:खी हुआ। परंतु अब सर्वज्ञमार्गी श्रीगुरुओं के प्रताप से मेरे स्वतत्त्व का मुझे भान हुआ है कि अहा! मैं तो सदा उपयोगस्वरूप ही रहा हूँ; मेरा उपयोगस्वरूप घाता नहीं गया है–इसप्रकार उपयोगस्वरूप की अनुभूति रागादि से अत्यंत भिन्न होने से वह परम अहिंसारूप है। अर्थात् उपयोगस्वरूप का अनुभव (शुद्ध उपयोग) वही परम अहिंसा धर्म है।

❀❀❀

मोक्षशास्त्र में श्री उमास्वामी कहते हैं कि—

'उपयोगो लक्षणम्'

उपयोग जिसका लक्षण है, वह जीव है। जीव को अपने उपयोगस्वरूप में सदा तन्मयता है, रागादि में अथवा शरीर में उसे तन्मयत्व नहीं है। उपयोग किसी अन्य से रचित नहीं है, अपना सत्त्व (सत्ता) टिकाने के लिये उसे इन्द्रियों अथवा राग की अपेक्षा नहीं है; इन्द्रियों अथवा रागरहित वह उपयोग स्वयंसिद्ध जीव का स्वरूप है।

❀ **'उपयोग' कहो अथवा 'चेतना' कहो।**

उस चेतना का रागरहित निर्मल परिणमन अर्थात् शुद्ध चेतना, वह अहिंसा है, वह धर्म

है, मोक्षमार्ग है। और उस चेतना में रागादि परिणमन, वह हिंसा है, वह संसार का कारण है।

❀ **जीव के पाँच भाव में लगाने पर—**

⁂ उपयोग पारिणामिकभाव है।

⁂ उपयोग का शुद्ध परिणमन क्षायिकादि भावरूप है।

⁂ रागादिकभाव औदयिकभाव हैं।

इसप्रकार उपयोग और राग की भाव से भिन्नता है।

❀ **नव तत्त्वों में लेने पर—**

⁂ उपयोग, जीव और संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व में गर्भित है।

⁂ रागादिभाव, आस्रव और बन्धतत्त्व में गर्भित है।

इसप्रकार उपयोग और राग ये दोनों तत्त्व भिन्न हैं।

❀ **न्याय-युक्ति से देखने पर—**

उपयोग के साथ आत्मा की समव्याप्ति है।

रागादि के साथ आत्मा की समव्याप्ति नहीं है।

अत: न्याय से उपयोग और राग की भिन्नता ही सिद्ध होती है, उपयोग की और राग की एकता किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती।

❀ **अनुभव से देखने पर—**

जीव रागादि रहित उपयोगस्वरूप से अनुभव में आता है। परंतु उपयोग रहित जीव कभी भी अनुभव में नहीं आता।

— इसप्रकार धर्मी की अनुभूति में उपयोग और राग की भिन्नता है; राग से भिन्न, उपयोगस्वरूप आत्मा ही अनुभूति में प्रकाशित होता है।

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

मेरा सुशाश्वत एक दर्शन-ज्ञानलक्षण जीव है;
अन्य सभी संयोगलक्षण भाव मुझसे बाह्य हैं॥

मैं एक शाश्वत ज्ञान-दर्शन लक्षण आत्मा हूँ; उपयोग के अतिरिक्त अन्य सभी संयोग-लक्षण भाव मुझसे बाह्य हैं; वे मेरे स्वभावलक्षणरूप नहीं हैं—ऐसी धर्मात्मा की अनुभूति है।

यदि रागादिभाव आत्मा का स्वलक्षण हो तो उस रागादि के नाश से आत्मा भी मरण को प्राप्त हो। परंतु राग का नाश होने पर भी सिद्धजीव सादि-अनंतकाल आनंद से जीवित रहता है—अतः राग आत्मा का लक्षण नहीं है। राग को लक्षण मानने से अव्याप्तिदोष आता है।

उपयोग ही आत्मा का लक्षण है। वह आत्मा से कभी भी भिन्न नहीं होता। उपयोग के अभाव में आत्मा का अभाव होता है; और आत्मा सदा उपयोगस्वरूप होता है; आत्मा कभी भी उपयोगलक्षण रहित नहीं होता है।

उपयोग-लक्षण जीव है और यही सच्चा जीवन है।
यह जीओ और जीने दो प्रभु वीर का उपदेश है।
चेतन-जीवन वीरपंथ में, नहीं देहजीवन सत्य है;
चेतन रहे निजभाव में बस! यही सच्चा जीवन है।

उपयोग जीव का सर्वस्व है। उस उपयोग की शुद्ध अवस्था हो, तब उसके साथ शांति-वीतरागता-आनंद आदि सर्व गुणों से आत्मा का जीवन शोभित हो उठता है; अतः वह सच्चा जीवन है, वह जीव को इष्ट है।

मोह-रागादि भाव उपयोग से विपरीत हैं, उनमें शांति का जीवन नहीं है, परंतु भाव-मरण है; अतः जीव को वह इष्ट नहीं है।

शुद्धोपयोग, वह सच्चा अहिंसा धर्म है; उसमें राग का अभाव है। वही जीव को इष्ट है; क्योंकि उसमें स्वभाव का घात नहीं होता परंतु आनंदमय स्वभाव की उपलब्धि होती है, अतः वही जीव को इष्ट है। इसप्रकार वीतरागभाव का उपदेश, वही भगवान महावीर का इष्ट उपदेश है।

हे भव्य जीवो!

भगवान महावीर के ऐसे इष्ट उपदेश को पहिचानकर उसकी उपासना करो; वही भगवान के निर्वाण का सच्चा महोत्सव है, और वही वीर प्रभु के प्रति सच्ची अंजलि है।

जय महावीर!

ॐ
जय सीमंधर-महावीर-शांतिनाथ-नेमिनाथ

राजकोट के प्रवचनों का प्रसाद

पूज्य स्वामीजी ने चैत्र शुक्ला एकम को प्रातःकाल सोनगढ़ में सीमंधर प्रभु के दर्शन करके राजकोट के लिये मंगल प्रस्थान किया और ४बजे राजकोट में सीमंधर प्रभु के दर्शन किये... अहा! जीवन में जिनदेव तो सदा साथ ही हैं। राजकोट में मंगल-प्रवचन में स्वामीजी ने कहा कि—अतीन्द्रिय आनंद का नाथ आत्मा है, वह मंगल है, उसमें परभाव का कर्ता-भोक्तापना नहीं है। ऐसा ज्ञान, वह राग से पृथक् हुआ विशुद्ध ज्ञान है।

ऐसे सर्वविशुद्धज्ञान का आत्मा में प्रवेश हो अर्थात् आत्मा में ऐसी ज्ञानदशा प्रगट हो वह अपूर्व मंगल है। ज्ञानभाव अपूर्व अतीन्द्रिय आनंद सहित है, उसे अपने आनंदवेदन में किसी देव-गुरु के राग का आश्रितपना नहीं है। रागादि के कर्ता-भोक्तापने का नाश करके वह ज्ञान प्रगट हुआ है।

समवसरण में विराजमान साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि आनंदस्वरूप चैतन्यतत्त्व है, उसे खोजने के लिये जीव जब अंतरोन्मुख होता है, तब उसे राग का कर्तृत्व छूट जाता है। राग के वेदन द्वारा आत्मा जानने में नहीं आता, भले ही वह राग देव-गुरु की ओर का हो, परंतु ज्ञान में तो उस राग के कर्तृत्व का नाश हो गया है।

देखो, सोनगढ़ में जो परमागम की प्रतिष्ठा का भव्य महोत्सव मनाया गया, वही परमागम प्रवचन में चल रहा है। परमागम में कहा हुआ भावश्रुतज्ञान कैसा है? उसे पहिचानने पर आत्मा में भाव-परमागम की स्थापना होती है। चैतन्य के अनुभवरूप यंत्र से धर्मी के आत्मा में भावश्रुत-परमागम उत्कीर्ण हो गया है। उसका आत्मा स्वयं ज्ञान-पुंजरूप से प्रगट हुआ है। उसकी अनुभव-वाणी ही परमागम है। ध्रुवतत्त्व का ध्येय जिसने निश्चित किया, उस

धर्मी जीव को भव नहीं होता। कदापि एक-दो भव हों तो वह चैतन्य की आराधना सहित ही होते हैं, आराधना पूर्ण करके वह अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करता है।—इसप्रकार मोक्ष का मांगलिक किया है।

[समयसार-सर्वविशुद्धाज्ञान अधिकार, कलश : 193]

भाई! तूने कभी नहीं सुनी, कभी नहीं जानी, कभी अनुभव नहीं किया, ऐसी बात संत तुझे इस समयसार परमागम में बतलाते हैं। अहा, ऐसा वीतरागी परमागम सोनगढ़ के परमागम मंदिर में उत्कीर्ण हो चुका है। विशेष यंत्र द्वारा संगमरमर पर अक्षरों का उत्कीर्ण होना, यह कार्य भारतवर्ष में प्रथम बार ही हुआ है। स्वामीजी परमागममंदिर की महिमा करते हुए कहते हैं कि अहा! यह परमागममंदिर देखने योग्य है... भारत में अद्वितीय है। अंतर में उस परमागम के वाच्यरूप आत्मा है, वह अद्वितीय है, उसकी रुचि के संस्कार धारण करके उसका अनुभव करने जैसा है। ऐसे अनुभव के बिना कोई विषयों में सुख मानें या किसी शुभराग में धर्म मानें—वे सब मिथ्यामार्ग में हैं। भाई! तेरा चैतन्यतत्त्व ज्ञानपुंज है; उसका अनुभव करने पर राग का आवरण टूट जाता है, चैतन्यपुंज में रागादि का कर्ता-भोक्तापना नहीं रहता। आनंद की तरंगों सहित भगवान आत्मा अनुभव में प्रगट होता है—उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अंतर में जहाँ ऐसे आत्मा की हवा आती है, वहाँ संपूर्ण ध्येय बदल जाता है। संसारी जीव उसे अच्छा या बुरा कहें परंतु उसे संसार की दरकार नहीं है, वह तो अंतर में आनंद-लहरों का स्वाद लेता-लेता मोक्ष के मार्ग में—प्रभु के मार्ग में चला जाता है। जगत उसे कहाँ से पहिचानेगा? भाई! आत्मभान के बिना निष्फल चला जा रहा है। आत्मज्ञान पूर्वक शरीर छूटे, उसी का अवतार सफल है। देह से भिन्न चैतन्य के भानपूर्वक देह छूटे, वह अशरीरी सिद्धपद को प्राप्त होता है।

सम्यग्दर्शन होने पर अनुभूति में आत्मा के आनंद का जो स्वाद आया, उसके द्वारा धर्मी अपने पूर्णानंद स्वभाव को श्रद्धा में लेता है... कि अहा! ऐसे आनंद से पूर्ण मेरा सत्त्व है। ऐसे आनंद की बानगी चखे बिना सिर्फ अनुमान से उसे नहीं जाना जा सकता। स्वसंवेदन द्वारा स्वाद चखा, वहीं पूर्ण स्वभाव कैसा है, उसकी खबर पड़ जाती है। अहा, जिसके एक अंश में इतना आनंद! और इतनी शांति! उसके पूर्ण स्वभाव की क्या बात! ऐसे स्वभाव के सन्मुख होकर ज्ञानपरिणतिरूप जो आत्मा परिणमित हुआ, वह आत्मा अपनी शुद्ध ज्ञानपरिणति में तन्मय है,

इसलिये वह रागादिभावों में तन्मय नहीं है, इसलिये उसे रागादि का कर्ता-भोक्तापना नहीं है।

जितना शुद्धभाव प्रगट हुआ है, उसकी अपेक्षा उसे विकार का अकर्ता-अभोक्तापना है; परंतु अभी पर्याय में साधक को जितने रागादि बाधकभाव हैं, उतना कर्ता-भोक्तापने का अशुद्ध परिणमन है, और उतना स्वयं का अपराध है—ऐसा भी धर्मी जानता है। एक आत्मा के परिणाम में, एक साथ शुद्धता और अशुद्धता, एकसाथ अकर्तापना और कर्तापना, एकसाथ सुख और दुःख—यह बात अंतर्दृष्टि के अनेकांत न्याय द्वारा ही समझ में आ सकती है। अहा, आत्मतत्त्व आश्चर्यकारी है कि एक ओर से देखने पर वह शांत चैतन्यरस में ही मग्न दिखायी देता है, और दूसरी ओर से देखने पर उसमें अशांति भी दिखायी देती है।

यदि केवल शांति ही हो, और अशांति सर्वथा न हो तो वह पूर्णदशा हो गई, अर्थात् वहाँ साधकदशा न रही, नय भी न रहे।

यदि अपनी पर्याय में केवल अशांति ही दिखायी दे, और शांति का रंचमात्र भी वेदन न हो, तो वहाँ साधकदशा नहीं है, वहाँ तो अज्ञानदशा है, उसे भी सच्चे नय नहीं होते।

साधकदशा ही ऐसी विचित्र है कि जिसमें शांति और अशांति के भाव एक साथ वर्तते हैं, और सच्चे नय से धर्मी उन्हें जानता है। मेरी परिणति मोह से मलिन है, ऐसा भी वह जानता है, और मोहरहित सम्यक्त्वादि शुद्धभाव भी प्रगट हुए हैं, उन्हें भी धर्मी जानता है और उन दोनों भावों का वेदन भी अपनी पर्याय में है। जब शुद्ध ज्ञानपरिणाम के साथ आत्मा को अभेद करके देखने में आता है, तब उसमें रागादि किन्हीं भावों का कर्ता-भोक्तापना नहीं है। ऐसी अनुभूति को 'सर्वविशुद्धज्ञान' कहा जाता है, और वह मंगल है।

परमागम में वीतरागरस का अमृत बरस रहा है

राजकोट में स्वामीजी का प्रवचन प्रातः समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पर होता था, और दोपहर में पंचास्तिकाय की 172वीं गाथा पर। एक ओर ज्ञानरस तो दूसरी ओर वीतरागरस का मंथन जिनवाणी में से होता था। जहाँ शांतरस का मंथन चलता हो, जहाँ तीव्र शांतरस झरता हो, वहाँ सांसारिक दुःख नहीं होता। राग-द्वेष में दुःख है, वीतरागता में तो मधुर शांति है। आचार्यदेव कहते हैं कि—

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि॥

[पंचास्तिकाय, गाथा-172]

अर्थ :— इसलिये मोक्षाभिलाषी जीव किंचित् भी राग न करो; ऐसा करने से वह भव्य जीव वीतराग होकर भवसागर को तरता है।

वाह! देखो तो कुन्दकुन्दस्वामी की मधुर वाणी! केवल वीतरागरस ही जिसमें झर रहा है।

साक्षात् मोक्षमार्ग कहो या परमागम का तात्पर्य कहो, वह वीतरागभाव ही है। वास्तव में वीतरागपना ही साक्षात् मोक्षमार्ग में अग्रसर है। इसलिये उसके समक्ष अरिहंतादि के प्रति होनेवाला राग अंतर में दाह का कारण है।—ऐसा समझकर साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महात्मा, चैतन्यतत्त्व के वीतरागी अमृत में लीन होकर, सर्व के प्रति का राग छोड़ देता है; इसप्रकार दुःख से जलते हुए भवसागर को पार करके वह उत्तम मोक्षसुख का अनुभव करता है।

अहा, ऐसा वीतरागपना जयवंत वर्तो, वह तीन लोक में साररूप है।

'तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता'

अरिहंतादि परद्रव्यों के प्रति भक्ति का किंचित् भी राग रह जाये तो वह साक्षात् मोक्ष को

अंतराय करनेवाला है।—ऐसा आचार्यदेव ने 171वीं गाथा में बतलाया है, और फिर 172वीं गाथा में समस्त राग छोड़कर वीतरागता का उपदेश दिया है।

अरे, सूक्ष्मराग द्वारा भी जीव की परिणति कलंकित होती है; राग की आग में जलता हुआ जीव दु:खी होता है। अरे, राग में शांति कैसे होगी? राग के सूक्ष्म वेदन को भी धर्मी जीव दु:ख और जलन मानता है।—फिर भले ही वह राग भगवान के प्रति हो। अरे, यह बात किसे रुचेगी?—कि अंतर में राग से पार चैतन्य की वीतरागी शांति का स्वाद जिसने चख लिया हो, उसे राग में जलन और दु:ख ही लगता है। अरे, जो राग और वीतरागता के स्वाद का अंतर भी नहीं जानता, वह राग से भिन्न चैतन्यशांति का कहाँ से अनुभव करेगा? और ऐसे अनुभव के बिना परमार्थ-भक्ति नहीं होती।

परमार्थ सिद्धभक्ति, जो कि मोक्ष का कारण है, वह कैसी है? शुद्धात्मतत्त्व में लीन ऐसे शुद्धोपयोग द्वारा राग का सर्वथा नाश होता है और सर्व राग का नाश होने पर जीव को परसंग और परभाव रहित शुद्ध आत्मदशा प्रगट होती है, उसका नाम परमार्थ सिद्धभक्ति है, और उसके द्वारा जीव सिद्धि को प्राप्त होता है। सिद्धों के प्रति शुभराग, वह कहीं परमार्थ सिद्धभक्ति नहीं है, वह राग तो मोक्ष में अंतराय करनेवाला है।

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि॥

[पंचास्तिकाय, गाथा-169]

अर्थ :— इसलिये मोक्षार्थी जीव नि:संग और निर्मम होकर सिद्धों की भक्ति (शुद्धात्मद्रव्य में स्थिरतारूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति) करता है, इसलिये वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

भाई! राग का प्रेम कर-करके तू अनंत काल से भवसागर में भ्रमण कर रहा है, और क्लेशाग्नि में जल रहा है। एकबार वीतरागता के अमृतरस का स्वाद ले तो तुझे मोक्षमार्ग निकट आ जाये।

* मोक्ष के लिये वीतरागता कर्तव्य है।

* वीतरागता के लिये स्वद्रव्य का आश्रय कर्तव्य है।

✻ स्वद्रव्य के आश्रय से मोक्ष है, और परद्रव्य के आश्रय से संसार है।

✻ मोक्षप्राभृत में आचार्यदेव कहते हैं—

परद्रव्यरत को दुर्गति, उत्तम गति स्वद्रव्य से;
यह जान निज में लीन हो, अरु विलग हो परद्रव्य से।

अनंत तीर्थंकरों द्वारा कहा हुआ मोक्ष का यह सत्यार्थ इष्ट उपदेश कुन्दकुन्दस्वामी ने परमागमों में प्रगट किया है।

भाई! परद्रव्य के आश्रय से तो राग होगा, वह राग का वेदन तुझे शांति नहीं देगा (राग आग दहे सदा, तातैं समामृत सेइये।) जिसप्रकार अग्नि जलन उत्पन्न करनेवाली है—फिर चाहे वह अग्नि नीम की लकड़ी हो या चंदन की लकड़ी की हो, चंदन की लकड़ी की अग्नि भी जलाती है; उसीप्रकार राग भी जीव को जलन उत्पन्न कराता है, फिर वह राग अशुभ हो या शुभ हो; अरिहंतादि के प्रति शुभराग भी जीव को अशांति का कारण है। अरे भाई! परद्रव्य के आश्रय से क्या कभी शांति हो सकती है? अंतर में तेरा स्वद्रव्य अतीन्द्रिय आनंद से परिपूर्ण है, उसमें उपयोग को लगा, उसमें ही परम शांति है, और वही मोक्ष का कारण है। मोक्ष के लिये तो सर्व के प्रति राग का सर्वथा क्षय करना योग्य है। किसी के प्रति रंचमात्र भी राग मुमुक्षु का कर्तव्य नहीं है। अहा, पंचम काल में वीतराग का अमृत जिनवाणी में से झर रहा है।

चैतन्य के शांत-अबंधस्वरूप का जिसे वेदन हुआ, उसे रागभाव बंधरूप ही लगते हैं, अभी ज्ञानी को राग होता अवश्य है, परंतु उस राग के वेदन में उसे किंचित् शांति नहीं लगती। राग के समय भी अंशयप से शुद्ध परिणति की शांति तो उसे सदा वर्तती रहती है। एक ओर चैतन्य के आनंद की ऊर्मि तथा दूसरी ओर राग का क्लेश—दोनों के साथ रहने में साधक को विरोध नहीं है। भक्ति आदि का राग आये, विकल्प आये, परंतु शांति के आधार से वह राग नहीं है और राग के आधार से किंचित् शांति नहीं है; दोनों एकसाथ होने पर भी वे एक-दूसरे के आधार से नहीं हैं। एक में शुद्ध स्वतत्त्व का आश्रय है, और दूसरें में परद्रव्य का आश्रय है। भाई, एकबार स्वद्रव्य के आश्रय से वीतरागता का निर्णय तो कर। मोक्षमार्ग वीतरागभावरूप ही है, रागरूप मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसे मार्ग की प्रसिद्धि भगवान के शासन में ही है। और ऐसा मार्ग वही इष्ट मार्ग है।

उपयोग ही आत्मा का जीवन है

उपयोगस्वरूप की अनुभूति ही सच्चा जीवन है।

प्रश्न :– आत्मा आयुकर्म के बिना जी सकता है ?

उत्तर :– हाँ, सच्चा जीवन आयुकर्म के बिना ही जिया जा सकता है। अनंत सिद्ध भगवंत आयुरहित ऐसा जीवन जीते हैं। जीव का प्राण चैतन्य। [आत्मद्रव्यहेतुभूत चैतन्यमात्रभाव धारणलक्षण जीवत्वशक्तिः] चैतन्यमात्र भाव को धारण करके सदा जीवित रहे ऐसी आत्मा की जीवत्वशक्ति है; इसलिये जीव सदा चैतन्यजीवन से जीनेवाला है, आयुकर्म से नहीं।

यदि आयुकर्म से जीवित रहता हो तो समस्त सिद्धभगवंत मर जाते।

आयु के अभाव में किसी जीव का अभाव नहीं होता।

इस चैतन्यजीवन को पहिचाने उसे देहबुद्धि नहीं रहती और मरण का भय मिट जाता है।

जिसे आयुकर्म का अभाव हुआ, उसे मृत्यु कभी नहीं होती।

क्या जीव आयुकर्म से जीता है ?—नहीं, जिसे आयुकर्म नहीं, वह सदा जीवित है, उसका कभी मरण नहीं होता। जिसे आयुकर्म है, वह तो मरता ही है। हे जीव! आयुकर्म के आधीन रहेगा तो मृत्यु को प्राप्त होगा। आयुकर्म से पृथक् होने पर तू सदा जीवित रहेगा। आयुकर्म रहित, स्वाधीन उपयोग द्वारा तू जीवित रहनेवाला है। अरे, तुझे अपने आत्मा का स्वाधीन जीवन जीना नहीं आया, और आयुकर्म के आधीन रहकर तू अनंत बार मृत्यु को प्राप्त हुआ, दुःखी हुआ। अब देह और कर्म से रहित अपने स्वाधीन चैतन्य से जीवित रहना सीख, तो कदापि मरण नहीं होगा और अनंत काल सुखी जीवन व्यतीत करेगा।

सिद्ध भगवंत अमर हैं; उन्हें मरण क्यों नहीं ?

आयुकर्म का अभाव होने से उन्हें कभी मरण है ही नहीं।

यदि जीव आयु से जीवित रहता हो तो आयु के अभाव में जीव का ही अभाव हो जाये।

जीव तो आयु के बिना अपने चैतन्यप्राण से ही जीता है—ऐसी उसकी जीवत्वशक्ति है। जहाँ चैतन्यभाव पूर्ण विकसित हुआ, वहाँ अमर जीवन प्रगट होता है।

इसप्रकार चैतन्यमय वीतरागभाव, वह आत्मा का जीवन है।

इसलिये हे भव्य जीव! जिन-सिद्धांत के अनुसार उपयोगस्वरूप आत्मा को पहिचानकर सच्चा जीवन जियो!

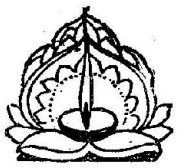

धन्य साधकदशा!

शुद्ध तत्त्व के सतत अनुभव में हमें अन्य कोई चिंता नहीं

वाह! साधक की दशा तो देखो! आनंदस्वरूप के साधक को अन्य चिंता का बोझ कैसा? आनंद के अवसर में शोक कैसा? हम तो दूसरों की चिंता छोड़कर, अपने शुद्धतत्त्व का ही आनंदपूर्वक अनुभव करते हैं। ऐसा अनुभव करके संत स्वयं कृतकृत्य हुए हैं और जगत को भी उसकी रीति बतलाकर कृतकृत्य कर दिया है।

चैतन्यसुख में मग्न जीव अपने निजभाव से भिन्न ऐसे सर्व बाह्य पदार्थों में सुख की कल्पना छोड़ देते हैं। पुण्यजनित अनुकूलता का ढ़ेर हो या पापजनित प्रतिकूलता का;—दोनों से भिन्न हमारा आत्मा ही चैतन्यसुख का समुद्र है—इसप्रकार धर्मी जीव स्वानुभूति से अपने में मग्न होते हैं, वहाँ बाह्य की चिंता कैसी?

धर्मी कहते हैं कि अहो! विभावरहित हमारा शुद्ध स्वभाव परम आनंद से भरपूर हमारे

अंतर में विद्यमान है, हम उसका सतत अनुभव कर रहे हैं—फिर अपने अनुभव से बाह्य ऐसे परभावों की हमें चिंता नहीं। परभाव तो भिन्न हैं, वे कहीं हमारी चैतन्यसत्ता में सत्‌रूप नहीं हैं। चैतन्य में तो वे असत् हैं। ऐसे चैतन्यतत्त्व के अद्वितीय सुख का हम अनुभव कर रहे हैं, फिर हमें अन्य कोई चिंता नहीं है।

भाई! तुझे शांति चाहिए हो तो अपने ऐसे तत्त्व को अनुभव में ले, तेरे अंतर में ही वह विराजमान है। जिसमें सर्व राग-द्वेष-अशांतिरूप विभाव असत् हैं, ऐसा आत्मा का सहज स्वभाव है, उसका अनुभव करो! हम उसका सतत अनुभव कर रहे हैं और तुम भी सुखी होने के लिये उसका अनुभव करो। ऐसे तत्त्व के अनुभव के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार जगत में कहीं किंचित् भी सुख नहीं है-नहीं है। अरे, जो तुम्हारे सत् में नहीं, उसमें तुम्हारा सुख कैसे होगा? इसलिये संयोग और विभाव की चिंता छोड़कर अपने परिणाम को इस चैतन्यतत्त्व में एकाग्र करो। स्वतत्त्व में जहाँ परिणाम एकाग्र हुआ, वहाँ चिंता या दुःख नहीं। बाह्य चिंता को छोड़कर अंतर में दृष्टि लगाकर शुद्ध स्वभाव का अनुभव करना ही एक मुक्ति का मार्ग है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग में मुक्ति नहीं है।

अरे, हमारे चैतन्यस्वभाव के अस्तित्व में विभाव कैसा? हमारे चैतन्यस्वभाव में परभावों का प्रवेश नहीं है। ऐसे स्वभाव का अनुभव हम कर रहे हैं। उसमें विभाव हैं ही नहीं, फिर उनकी चिंता कैसी? देखो तो सही! धर्मी जीव निश्चितरूप से, निर्भयरूप से स्वतत्त्व का अनुभव करते हैं। अरे, जगत की चिंता हम क्यों करें? हमारे आनंदमय स्वतत्त्व में पर की चिंता कैसी? हमारी शांत-निराकुल अनुभूति में चिंता के दुःख का भार कैसा? हमारे ज्ञान में तो हमारा चिदानंदतत्त्व विराजमान है, उस ज्ञान में परभाव का बोझा नहीं है। जो ज्ञान परभावों से पृथक् होकर अंतर के परमात्मतत्त्व में लीन हुआ, वह आनंदपूर्वक मोक्ष की साधना कर ही रहा है।

वाह! देखो तो साधक की दशा! आनंदस्वरूप के साधक को अन्य चिंता का बोझ कैसा? आनंद के अवसर में शोक कैसा? हम तो अन्य सभी चिंताओं को छोड़कर अपने एक शुद्धतत्त्व का ही आनंदपूर्वक अनुभव कर रहे हैं। ऐसा अनुभव करके संत कृतकृत्य हो गये हैं, और जगत को भी उसकी रीति बतलाकर कृतकृत्य कर दिया है।

अंतर में परिणमन करके सिद्धों के साथ बातें की हैं कि हे सिद्धभगवंत! आप मोक्ष दशा

में पहुँच गये हैं और मैं भी आपके मार्ग पर आत्म-अनुभव करता-करता मोक्ष में आ रहा हूँ। प्रभो! मैंने परभावों का सारा बोझ अपने ज्ञान में से निकाल दिया है। धर्मात्मा को अपने अनुभव से निर्णय हो गया है कि हमारी चेतना के स्वानुभव में परभावों का अंशमात्र भी नहीं है, ऐसी चेतना के द्वारा इस मोक्ष को साध रहे हैं, फिर अन्य चिंताओं का क्या प्रयोजन? जहाँ चेतना प्रगट होती है, वहाँ चिंता चूरचूर हो जाती है। इस संसार को हटाऊँ और मोक्ष प्राप्त करूँ—ऐसी चिंता भी स्वानुभूति में नहीं है। हमारा एक परम तत्त्व ही हमारे अंतर में निरंतर प्रकाशमान है।—ऐसा बुध पुरुषों का अनुभव है।

सच्चा अहिंसा-जीवन जीने की रीति

भगवान महावीर द्वारा कहे हुए 'परम अहिंसाधर्म' को जानने के लिये और वैसा जीवन जीने के लिये, मुमुक्षु जीव को प्रथम तो चैतन्य-उपयोग और राग—इन दोनों का अत्यंत भिन्नपना जानना चाहिए। भिन्नपना जाने पर ही रागरहित शुद्ध उपयोगरूप अहिंसक जीवन जी सकता है।

ऐसा भिन्नपना किसप्रकार जानना?—ऐसी अंतर में जिज्ञासा जागृत हो तो—भगवान महावीर और उनके शासन में हुए संतों ने वैसा भिन्नपना अपने आत्मा में साक्षात् अनुभव करके आगम में स्पष्ट बतलाया है; वह यहाँ कहते हैं—

सर्वज्ञ ज्ञानविषै सदा, उपयोग लक्षण जीव है।
वो कैसे पुद्गल हो सके जो, तू कहे मेरा अरे॥

शरीर और रागादि भावों से भिन्न—चैतन्यमय आत्मतत्त्व को जो नहीं जानता और

रागादि-संयुक्त जीव का ही अनुभव करता है, ऐसे अप्रतिबुद्ध-जिज्ञासु को, आचार्यदेव सर्वज्ञज्ञान की साक्षी से और अपने स्वानुभव से प्रतिबोध करते हैं कि हे भाई! 'जो नित्य उपयोग स्वरूप है, वह जीव है' ऐसा सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में आया है। आगम में भी भगवान ने स्पष्ट ऐसा प्रकाशित किया है, और अनुभव में भी जीव सदा ज्ञानस्वरूप ही अनुभव में आता है। अपना उपयोगपना छोड़कर जीव कभी पुद्गलरूप नहीं होता; जैसे अंधकार और प्रकाश को एकपना नहीं परंतु भिन्नपना ही है, उसीप्रकार चेतनप्रकाश रहित ऐसे रागादिभावों को और चेतनप्रकाशरूप उपयोग को कभी एकपना नहीं परंतु सदा भिन्नपना ही है। इसप्रकार अपने उपयोगलक्षण द्वारा अपने जीव को तू समस्त जड़ से और राग से भिन्न जान, और उपयोगस्वरूप ही अपने को अनुभव में लेकर हे जीव! तू अत्यंत प्रसन्न हो... और अहिंसक जीवन जी।

उपयोगस्वरूप की अनुभूति रागादि से अत्यंत भिन्न होने से वह परम अहिंसारूप है, अर्थात् उपयोगस्वरूप का अनुभव (शुद्धउपयोग) वह परम अहिंसाधर्म है, वही सच्चा जीवन है।

मोक्षशास्त्र में भी उमास्वामी कहते हैं कि 'उपयोगो लक्षणम्'

उपयोग जिसका लक्षण है, वह जीव है। जीव को अपने उपयोगस्वरूप में सदा उपयोगपना है, रागादि में उसे तन्मयपना नहीं है; वह उपयोग किसी के द्वारा रचित नहीं है, अपना सत्पना स्थिर रखने के लिये इंद्रियों या राग की अपेक्षा नहीं है, इंद्रिय या रागरहित वह स्वयंसिद्ध जीव का स्वरूप है।

* उपयोग कहो या चेतना कहो—

उस चेतना का रागरहित निर्मल परिणमन अर्थात् शुद्धचेतना, वह अहिंसा है, वह धर्म है, वह मोक्षमार्ग है। और उस चेतना में रागादि अशुद्ध परिणमन, वह हिंसा है, वह संसार का कारण है।

* जीव के पाँच भावों में रखने पर—

* उपयोग वह पारिणामिकभाव है।

* उपयोग का शुद्ध परिणमन वह क्षायिकादि भावरूप है।

※ रागादि भाव, वह औदयिकभाव है।

इसप्रकार उपयोग और राग को भाव से भिन्नता है।

*** नव तत्त्वों का विचार करने पर—**

※ उपयोग, वह जीव और संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व में आता है।

※ रागादिभाव आस्रव और बंधतत्त्व में जाते हैं।

*** न्याय-मुक्ति से देखने पर—**

※ उपयोग के साथ आत्मा की समव्याप्ति है।

※ रागादि के साथ आत्मा की समव्याप्ति नहीं है।

※ अनुभव से देखने पर भी—रागादि रहित उपयोगस्वरूप जीव अनुभव में आता है। परंतु उपयोगरहित जीव कभी अनुभव में नहीं आता।

— इसप्रकार उपयोग और राग यह दोनों तत्त्व भिन्न हैं।

स्वर्ग मिलना सरल है, मनुष्य भव कठिन

लोग स्वर्ग के वैभव की बात सुनें वहाँ आश्चर्यचकित हो जाते हैं। परंतु भाई! वह स्वर्ग कहीं आश्चर्यजनक वस्तु नहीं है; तू अनंतबार वहाँ हो आया है। स्वर्ग के असंख्य भव हों, तब मनुष्य का एक ही भव मिलता है। अन्य प्रकार से कहें तो जीवों में से जब असंख्य जीव स्वर्ग में जायें, तब मात्र एक जीव मनुष्य में आता है।—इतना महँगा है, मनुष्य भव और देव भव तो उसकी अपेक्षा असंख्यगुना सस्ता है।

आत्मा के अज्ञान से चार गति में भटकते हुए जीव ने सबसे अधिक भव एकेन्द्रियादि तिर्यंचगति में किये हैं; तदुपरांत मनुष्य, नरक और स्वर्ग के भव भी असंख्यगुने किये हैं। औसत लगायें तो स्वर्ग और नरक के असंख्य भव करे, तब एक भव मनुष्य का मिलता

है;—ऐसी मनुष्यभव की दुर्लभता है। और ऐसे दुर्लभ मनुष्यभव में भी जैनधर्म का वीतरागी उपदेश सुनने को मिलना तो अत्यंत दुर्लभ है। ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव और वीतरागी जैनधर्म का उपदेश महाभाग्य से प्राप्त हुआ है, तो अब तू शीघ्र जाग और सावधान होकर आत्मा की पहिचान द्वारा सम्यग्ज्ञान प्रगट करके भवदुःख का अंत कर।

छिंदवाडा (म.प्र.)—वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ जयपुर के अंतर्गत जैन प्रशिक्षण तथा शिक्षण शिविर का भव्य आयोजन किया है। शिविर तारीख 3-6-74 से 22-6-74 तक चलेगा। सभी भाइयों को छिंदवाडा आने का हमारा आमंत्रण है। आप अपने आगमन की सूचना हमें पत्र द्वारा दें।

मंत्री—
धन्यकुमार पाटनी

बासगढ़ (शिवपुरी)—मुमुक्षु मंडल के विशेष अनुरोध पर श्री पंडित गोविंददासजी पधारे। प्रवचन के साथ-साथ पूज्य स्वामीजी का प्रवचन भी टेपरिकार्ड द्वारा आप सुनाते थे। आपके प्रवचन में आसपास के ग्रामों के जिज्ञासु भी अच्छी संख्या में उपस्थित रहते थे।

कारंजा (महा.)—ब्रह्मचारी श्री दीपचंदजी गोरे लिखते हैं कि मैं 2 दिन अकोला, 2 दिन हिंगोली, 4 दिन मंगलूर, 3 दिन कारंजा, फालेगाँव, आनसिंग और पूसद में 5 दिन का कार्यक्रम करके नागपुर आ रहा हूँ। वहाँ से छिंदवाडा शिक्षण शिविर में सम्मिलित होऊँगा। शिविर तारीख 3-6-74 से तारीख 22-6-74 तक है। अधिक संख्या में तत्त्व-जिज्ञासु शिविर में पधारे, ऐसा प्रयत्न चालू है। श्री ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी कारंजा हैं।

करेरा (म.प्र.)—समाज के अनुरोध पर श्री पंडित गोविंददासजी तारीख 1-4-74 को करेरा पधारे। यहाँ आपका तीन दिन का कार्यक्रम रहा। आपके प्रवचन में आसपास के गाँववाले भी अधिक संख्या में उपस्थित रहते थे। स्वामीजी द्वारा 'भगवान आत्मा' यह शब्द सुनते हैं, तब हमारे हृदय अधिक प्रफुल्लित होते हैं। आप स्वामीजी का प्रवचन टेपरील द्वारा सुनाते थे। समाज ने अच्छा धर्म लाभ लिया। हम पूज्य स्वामीजी के एवं सोनगढ़ संस्था के आभारी हैं।

स्व. कविवर दीपचंदजी कृत

ज्ञान-दर्पण

[गतांक से आगे]

करतार करता है करता अकरता है, करता अकरता की रीति सौं रहतु है।
मूरतीक मूरति की उपेक्षा अमूरती है, सदा चिनमूरति के भावसौं सहतु है॥
एकमैं अनेक एक है अनेकमाहिं एक, एक मैं अनेक है अनेकता गहतु है।
लच्छिन की लच्छि लोऐ परतच्छ छिपाइयतु, कहूं न छिपाइयतु जगमैं महतु है॥115॥

है नाहीं है नाहिं वैनगोचर हूं नाहीं यह, है नाहीं है नाहीं मांहिं तिहुंभेद कीजिये।
स्वपर चतुष्कभेद सेती जहाँ साधियतु, सो ही नयभंगी जिनवाणी में कहीजिए।
स्यातपदसेती सात भंग कौ सरूप साधैं, परमाणभंगी सों अभंग साधि लीजिए।
दोडसौं रहत सौ तो दुरनय भंगी कहो, ये है तीनभेद सातभंगी के लखीजिए॥116॥

स्वसंवेद ज्ञान अमलान परिणाम आप, आपन कौं दये आप आप ही सौ लऐ हैं।
आप ही स्वरूप लाभ लह्यौ परिणामनिमैं, आप ही में आपरूप ह्वै के थिर थये हैं॥
सासतो खिणक आप उपादान आप करै, करता करम क्रिया आप परणये हैं।
महिमा अनंत आप आप धरैं आप ही की, आप अविनाशी सिद्धरूप आप भये हैं॥117॥

—: आत्मधर्म के ग्राहकों से... :—

[अपना वार्षिक चंदा भेजकर व्यवस्था में सहयोग दीजिये]

प्रिय महानुभव!

(1) आपका वार्षिक चंदा इस चैत्र मास में पूरा हो रहा है। कृपया, नये वर्ष का चंदा 4-00 चार रुपये मनीआर्डर से भिजवा दें ताकि नये वर्ष का अंक आपको समय पर मिल सके।

(2) अपना पूरा नाम और पता जिला-तहसील के साथ स्पष्ट अक्षरों में लिखें। जिससे आपको अंक नियत समय पर मिलता रहे।

(3) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती है।

(4) यदि आप पुराने ग्राहक हैं, तो कृपया ग्राहक नंबर स्पष्ट अक्षरों में लिखें।

(5) एक बार में सिर्फ एक ही वर्ष का चंदा लिया जाता है इसलिये चंदा 4-00 चार रुपये ही भेजें।

आशा है आपका सहयोग हमें प्राप्त होगा। चन्दा निम्न पते पर भेजें—

मैनेजर
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-सौराष्ट्र)

—: सूचना :—

सोनगढ़ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर जिन साधर्मी भाइयों ने बोली या तीर्थरक्षा फंड के लिये दान की घोषणा की थी। उनसे अनुरोध है कि वे दान की रकम का ड्राफ्ट, बैंक ऑफ इंडिया, सोनगढ़ अथवा भावनगर की किसी भी बैंक का ड्राफ्ट भेजें। नीचे लिखे हुए दो नाम में से किसी एक नाम का ड्राफ्ट भेजें—

(1) श्री परमागम-मंदिर प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति, सोनगढ़

(2) श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, बम्बई

प्रतिष्ठा-महोत्सव का हिसाब पूर्ण करना है। अतः आपसे दान की रकम शीघ्र भेजने का अनुरोध किया है।

व्यवस्थापक—
श्री परमागम-मंदिर प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

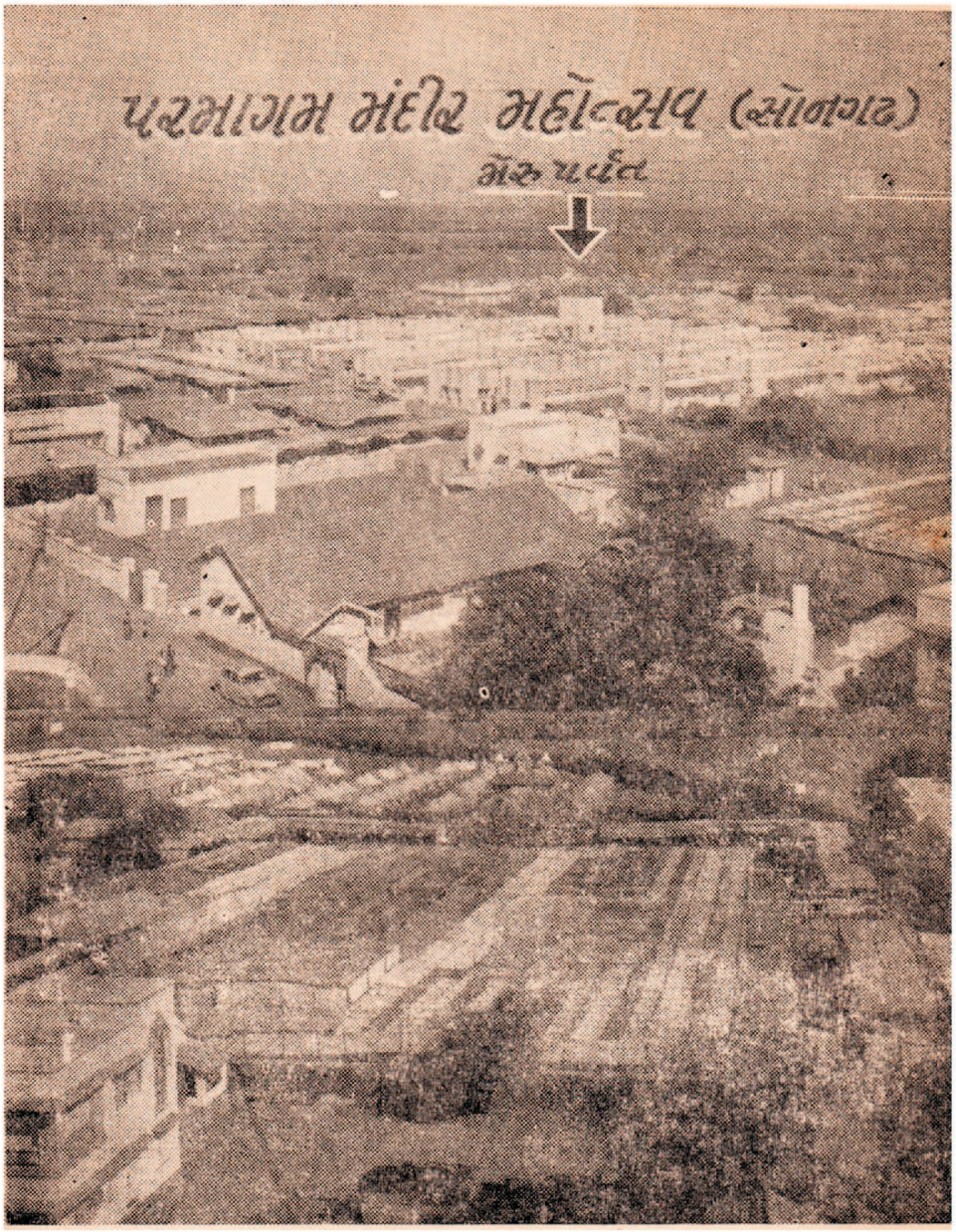

आकाश में से लिये गये इस चित्र में जहाँ तीर का निशान है, वहाँ भानुवाड़ी के मैदान में पांडुकशिला की रचना है; उसके चारों ओर 25 हजार से अधिक नर-नारी आनंदपूर्वक जन्माभिषेक के दृश्य को देख रहे हैं। चित्र के निचले भाग में अतिथियों के लिये तम्बू तथा प्रतिष्ठामंडप है।

वीर प्रभु के पालनाझूलन के दृश्य : गुरुदेव प्रसन्नता से देख रहे हैं।

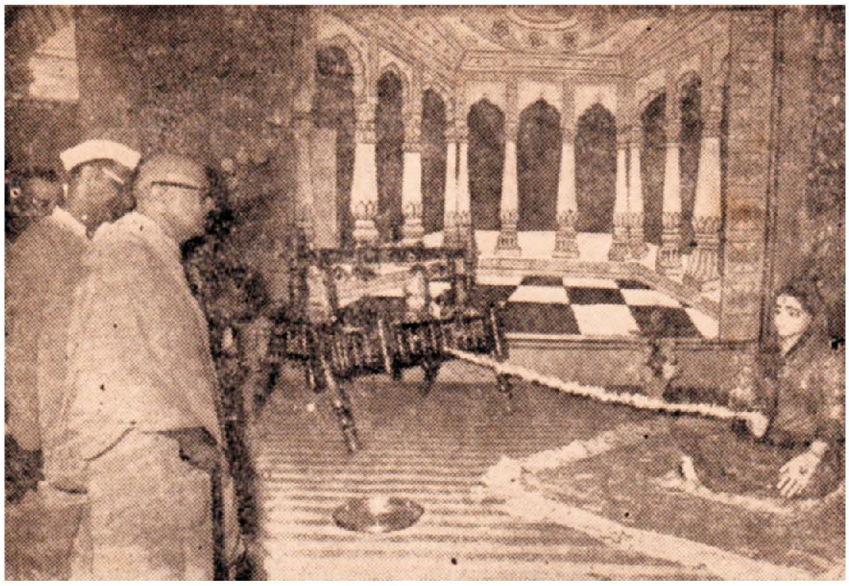

पालने में झूलते हुए वीरकुंवर कहते हैं:—

हे मोक्ष की साधक माता! तुम्हें धन्य है! हे माता!
तुम्हारे दर्शन जगत को आनन्द देनेवाले हैं!

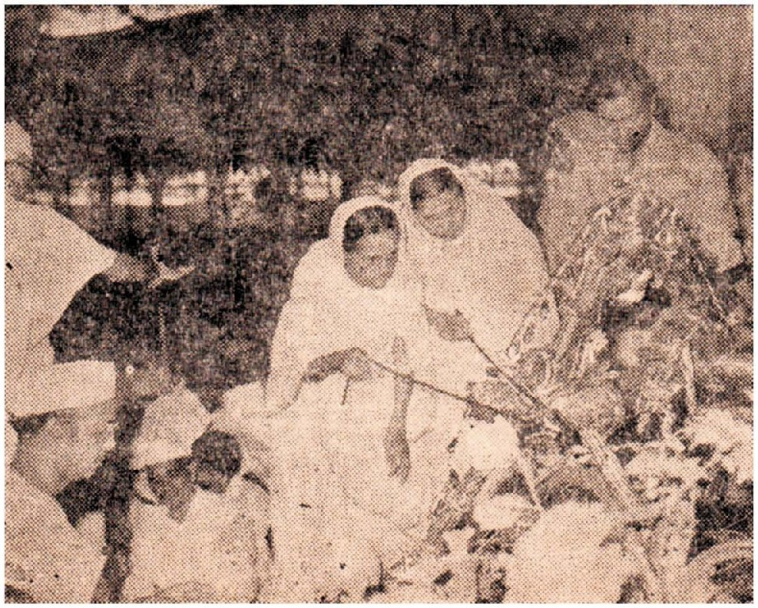

बेटा! तू तो स्वानुभूति की मस्ती में झूलनेवाला है;
तेरा जन्म जगत के लिये मंगलकारी है।

पालनाझूलन के पावन दृश्य

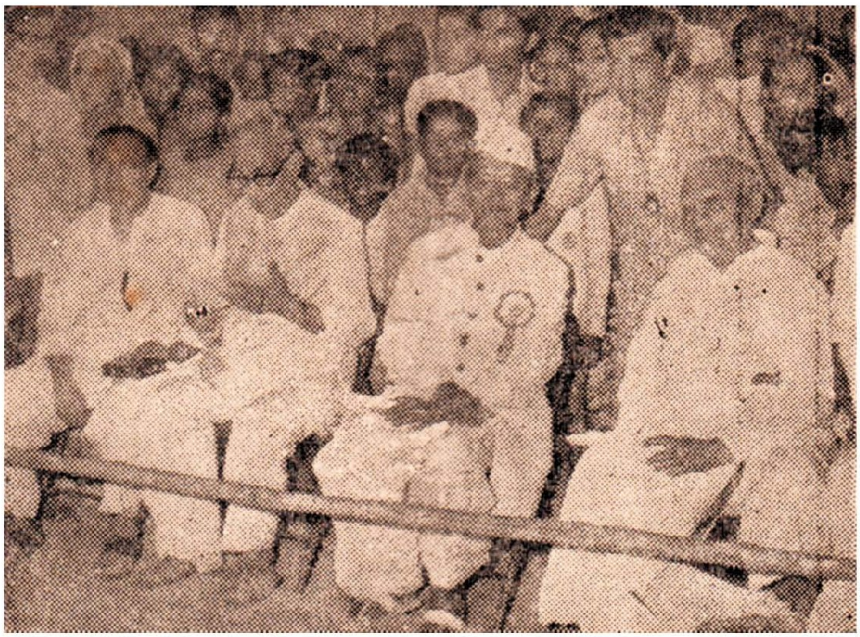

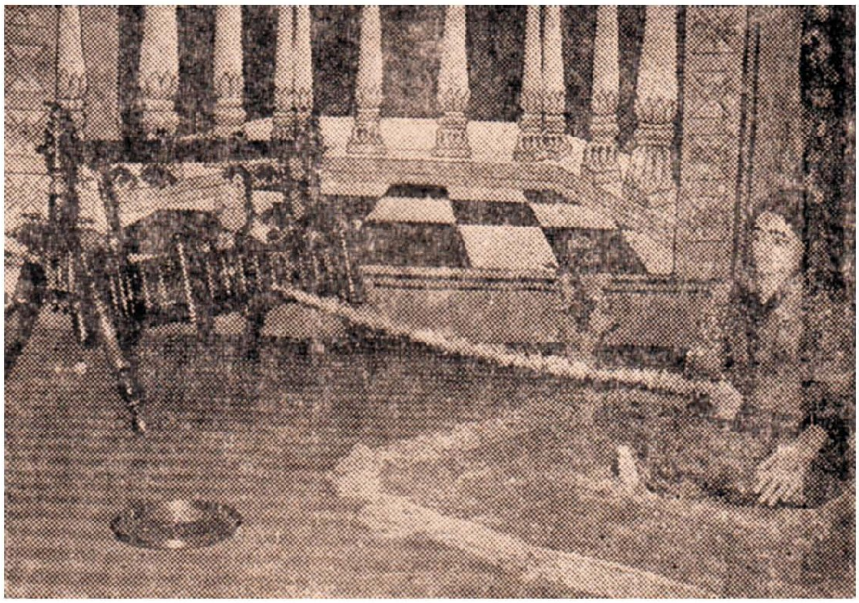

परमागम मंदिर प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर माननीय श्री रामजीभाई, श्री नवनीतभाई जवेरी, श्री स्वरूपचन्दभाई और धीरुभाई श्रॉफ आदि झूले का दृश्य देख रहे हैं तथा माता-पुत्र की आनंदकारी बातें सुन रहे हैं।

हेलीकोप्टर में बैठकर अत्यन्त भक्तिभावपूर्ण चित्त से पूज्य बहिनश्री-बहिन मंदिर के ऊपर पुष्पवृष्टि करने के लिये जा रही हैं। दोनों बहिने महिमा करती हैं कि अहा, जिन्होंने अपने लिये स्वानुभूति का मार्ग बतलाया है, ऐसे वीरनाथ भगवान और उनकी वाणी इस परमागम-मंदिर में विराजमान है... चलो, उस पर पुष्पवृष्टि करें... तथा साथ में विदेहीनाथ सीमंधर भगवान के मंदिर और मानस्तम्भ पर भी पुष्पों की वर्षा करेंगे।

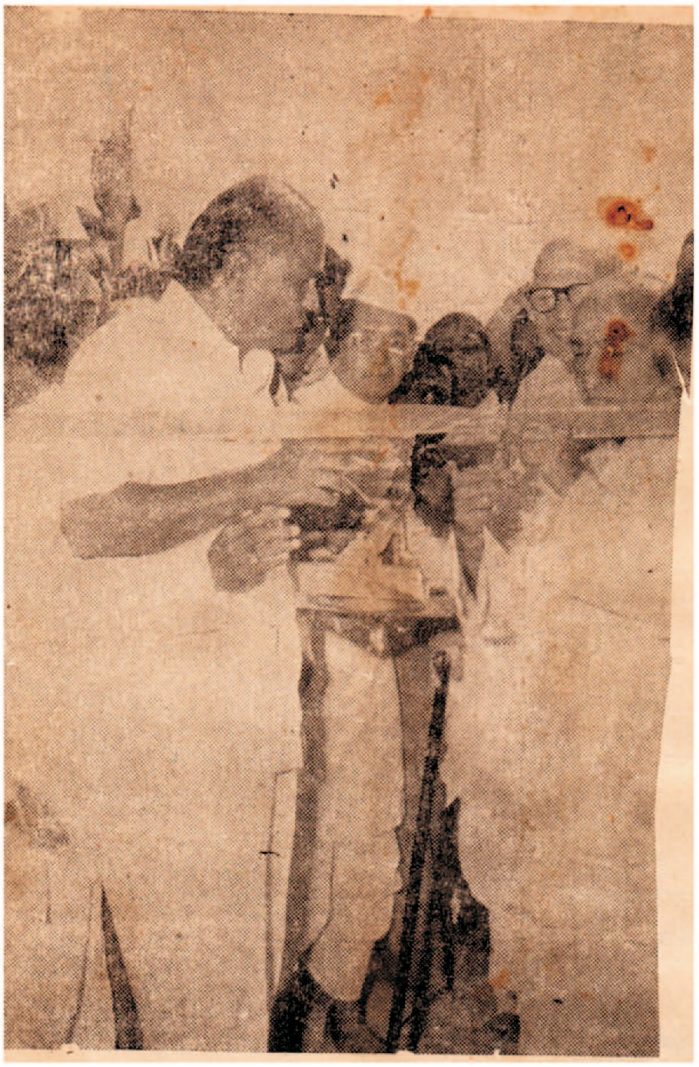

सोनगढ़ में श्री शाहू शांतिप्रसादजी जैन (आल इंडिया दि० जैन 2500 वाँ महावीर निर्वाण-महोत्सव समिति के अध्यक्ष) परमागममंदिर का उद्घाटन कर रहे हैं; पास में ही गुरुदेव प्रसन्नचित्त से आशीर्वाद दे रहे हैं। अध्यक्ष श्री नवनीतभाई जवेरी तथा इंजीनियर श्री चिमनभाई सेठ आदि उत्साहपूर्वक भाग ले रहे हैं।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)